



ISSN Print: 2394-7500  
 ISSN Online: 2394-5869  
 Impact Factor: 8.4  
 IJAR 2022; 8(2): 591-393  
[www.allresearchjournal.com](http://www.allresearchjournal.com)  
 Received: 18-11-2021  
 Accepted: 19-12-2022

**डॉ. बलराम कुमार**

अतिथि सहायक प्राध्यापक,  
 हिन्दी-विभाग, डॉ. लोहिया कर्पूरी  
 विश्वेश्वर दास महाविद्यालय, ताजपुर,  
 समस्तीपुर, भारत

## दिवाकर की कहानियों में वृद्धों की स्थिति के बदलते सामाजिक परिप्रेक्ष्य

**डॉ. बलराम कुमार**

**सारांश**

21वीं सदी की दुनिया जिन चुनौतियों और समस्याओं का सामना कर रही हैं, उनमें तेजी से बढ़ती हुई वृद्धों की जनसंख्या से उत्पन्न समस्या विकराल रूप धारण करती जा रही है। संयुक्त परिवार जैसे-तैसे टूटते गए, बुजुर्गों की स्थिति भी दयनीय होती चली गई। हम यह समझ गए की इनके बिना हमारे जीवन का कोई आधार नहीं है। वृद्ध-जन संपूर्ण समाज के लिए, अतीत के लिए अनुभवों के भंडार तथा सभी के श्रद्धा के पात्र हैं। समाज में यदि उपयुक्त सम्मान मिले और उनके अनुभवों का लाभ उठाया जाय तो वे हमारी प्रगति में काफी भागीदारी भी कर सकते हैं। चिंता केवल इस बात की होनी चाहिए कि वे स्वस्थ, सुखी और सदैव सक्रिय रहें। यहाँ भीष्म साहनी की एक कहानी "चीफ की दावत" याद आती है। इस कहानी में जहाँ बेटे ने अपने बाँस को घर बुलाने से पहले ही बूढ़ी माँ को कैद कर लिया था, पर आते-जाते बाँस माँ से टकरा ही गया और वह भावनात्मक पल।

**कूटशब्द** : समस्याओं का सामना, उदात्त,

**प्रस्तावना:**

यह सच है कि वृद्धावस्था में शारीरिक शक्ति क्षीण होती जाती है, पर उसके कष्ट जितने कल्पित हैं उतने यथार्थ नहीं हैं। बात यह है कि हमें शक्ति के अभाव का ज्ञान ही नहीं हो पाता। तरुणावस्था में जो शक्ति बाह्य जगत् में जाकर विकीर्ण हो जाती है। वही अर्न्तजगत् में एकत्र-सी हो जाती है। न क्षणिक सुखों से वृद्धों को उल्लास होता है। न ही क्षणिक दुखों से विषाद। न तो कोई सफलता उन्हें उत्तेजित करती है और नहीं कोई असफलता हताश।

कुछ लोगों की यह धारणा है कि वृद्धावस्था में धर्म की ओर रुचि हो जाती है। प्राचीन काल में वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम स्वीकार कर संसार से विरक्त हो जाते थे। हिन्दु-समाज के इसी आदर्श ने यहाँ लोगों में विश्वास उत्पन्न कर दिया है कि वृद्धावस्था में आपने आप धर्म की भावना आ जाती है। यह सत्य है कि तरुणावस्था में जो चंचलता रहती है, वह वृद्धावस्था में नहीं रह जाती। सच तो यह है कि वृद्धावस्था में हम जिस बात को अपनाते हैं, उसे इतनी हठता से अपनाते हैं कि मृत्यु ही हम को उस बात से मुक्ति दे सकती है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों में जो वृद्ध जिसको स्वीकार कर लेता है वह उसी में लिप्त हो जाता है। वास्तव में वृद्धावस्था का सच्चा आनन्द है आत्मसंतोष।

वृद्धावस्था मानव-जीवन का वह सत्य है, जिसमें व्यक्ति की न केवल आन्तरिक शक्ति, शारीरिक क्षमता और स्मरण-शक्ति क्षीण होती है, बल्कि उसका उत्साह भी मन्द पड़ जाता है, जीवन में नैराश्य छा जाता है और उसका धैर्य दम तोड़ने लगता है तथा उसका शरीर विभिन्न बीमारियों का आश्रय भी बन जाता है, जिसके कारण वह ठीक से अपना दैनिक क्रियाकलाप तक कर पाने में समर्थ नहीं हो पाता और उसे उस अवस्था में सर्वाधिक सहृदयता, सहानुभूति, करुणा, दया और सहायता की आवश्यकता होती है। हिन्दी की अनेक कहानियों में वृद्धों के दुःख-दर्दों को विभिन्न स्तरों पर चित्रांकित किया गया है। यह चित्रांकन कोरी कल्पना नहीं है, बल्कि उसमें समाज का यथार्थ जीवित है। उन कहानियों में वृद्ध कहीं बेसहारा हैं, तो कहीं नितांत अकेला कहीं वे फालतूपन के शिकार हैं, तो कहीं वस्तुकरण के। इन कहानियों में उनके खालीपन, संत्रास, भय और आर्थिक संकट को भिन्न-भिन्न रूपों में चित्रित किया गया है। कथा के साँचे में ढली हुई जीवन की यह वास्तविकता मर्म पर गहरी चोट भी करती है और हृदय को द्रवीभूत भी। खुशियों के मेले से परे वे वृद्धजन अपने अनुभवों का पिटारा लिये स्वयं को किनारे खड़े पाते हैं- नितांत अकेला, असहाय!

**Corresponding Author:**

**डॉ. बलराम कुमार**

अतिथि सहायक प्राध्यापक,  
 हिन्दी-विभाग, डॉ. लोहिया कर्पूरी  
 विश्वेश्वर दास महाविद्यालय, ताजपुर,  
 समस्तीपुर, भारत

वृद्धजनों में जहाँ सर्वाधिक दयनीय स्थिति विधवाओं की है जिनकी मार्मिक पीड़ा का वर्णन प्रेमचन्द 'पंच परमेश्वर', 'बूढ़ी काकी' और 'बेटों वाली विधवा' जैसी कहानियों में करते हैं, तो उदय प्रकाश 'छप्पन तोले का करधन' शीर्षक कहानी में। भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' कहानी में शामनाथ द्वारा माँ को फालतू वस्तु मानना पुत्र की विकृत मानसिकता का प्रतीक है। उषा प्रियंवदा की 'वापसी' कहानी में गजाधर बाबू फालतूपन और अकेलापन के शिकार हैं। उनके साथ परिवार के सभी सदस्यों द्वारा अमानवीय व्यवहार किया जाता है और उन्हें हाशिए पर रखा जाता है। शैलेन्द्र सागर की 'ब्रंच' शीर्षक कहानी में अनुज के बाबा पीढ़ियों के जबर्दस्त विरोध के कारण व्यथित नजर आते हैं। यद्यपि हिन्दी की कोई कहानी 'वृद्ध-विमर्श' को केन्द्र में रखकर नहीं लिखी गयी है, फिर भी इन कहानियों के माध्यम से वृद्धावस्था की संवेदनाओं का जो चित्र उभरता है, वह हृदय को व्यथित कर देता है। समाज की संकुचित मानसिकता उन वृद्धों के जीवन को नरक बना रही है, जो अपने अनुभवों से हमारा मार्गदर्शन कर उज्ज्वल भविष्य के पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा दे सकते हैं।

मानव के विकास की यात्रा का एक पड़ाव है— वृद्धावस्था, जहाँ जीवन के भाग-दौड़ में लड़कर गिरकर, संभलकर, सहेजकर और सबसे बढ़कर कुछ प्राप्त कर अथवा प्राप्त करने की आकांक्षा लिये व्यक्ति ठहरता है। इस ठहराव तक पहुँचने की दशा और दिशा भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की भिन्न-भिन्न हो, परन्तु यहाँ पहुँचना सभी को होता है। यहाँ पहुँचकर व्यक्ति बुढ़ापे की जिस दुनिया में कदम रखता है उसका संसार अपनी भाव-भंगिमाओं के साथ इस कदर परिवर्तित हो जाता है कि 'वृद्धावस्था' बुद्धिजीवियों के लिए 'विमर्श' का प्रश्न खड़ा करता है।

'बहुत पहले से उन कदमों की आहट जान लेते हैं  
तुझे ऐ जिन्दगी हम दूर से पहचान लेते हैं।'

फिराक गोरखपुरी की इस बात से हिन्दी कहानी में वृद्ध-विमर्श के सन्दर्भ की तलाश करें तो आश्चर्यजनक रूप से यह कथन सार्थक दिखायी पड़ता है। हिन्दी की प्रथम कहानी के रूप में वर्तमान में मान्यताप्राप्त माधवराव सप्रे की 'एक टोकरी भर मिट्टी' (1901) से ही वृद्ध-विमर्श का सिंहद्वार खुलता-सा दिखता है, लेकिन इस भावना को अत्यन्त सशक्त अभिव्यक्ति देती हैं, प्रेमचन्द की कहानियाँ; जहाँ 'पंच परमेश्वर', 'बूढ़ी काकी' और 'ईदगाह' के रूप में वृद्ध-जीवन की विडम्बना और मार्मिकता का सच अनेक कोणों से उजागर हुआ मिलता है।

मानवीय संबंधों से रागात्मकता का रिसाव व्यक्तिवादिता के जिस छिद्र से दिनानुदिन प्रबल होता जा रहा है, उसने न केवल वृद्ध-जीवन को अनुपयोगी, फालतू और रद्दी की चीज बना दिया है, वरन् वर्तमान समाज की मानसिकता में पल रही 'चीफ की दावत' के शामनाथ की स्थिति को प्रकट कर दिया है, जो अपने आचरण से आज के समय में सभ्य दिखनेवाले समुदाय के अभिनव 'स्व-धर्म' से हमारा परिचय करवाता है और जीवन की अपसंस्कृति, स्वार्थपरकता और आत्मकेन्द्रीयता का भीषण रूप उजागर करता है।

हिन्दी कहानी में 'वृद्ध-विमर्श' के बहुविध रंगों में उषा प्रियंवदा की 'वापसी' का अकेलापन और संत्रास की विडम्बना हो या उदय प्रकाश के 'छप्पन तोले का करधन' की अमानवीयता का भयानक सत्य; कृष्णा सोबती की 'दादी अम्मा' में क्षरित होती जा रही पारिवारिक सहिष्णुता का महौल हो या शैलेन्द्र सागर के 'बंच' के अनुज की आधुनिकता की अंधभक्ति, सर्वत्र वृद्ध-जीवन विडम्बनाओं के कठघरे में खड़ा होकर लाचारी का ही बोध नहीं कराता, मनुष्यता की संवेदना से नष्ट होती जा रही नैतिकता और मूल्यपरकता से निर्मित स्थितियों में मानवीय रिश्तों के घुटन का जीवंत रूप भी दर्शा देता है।

अतः कहना न होगा कि वृद्ध-जीवन की विडम्बना के विविध पाठों से गुजरते हुए यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि जीवन की प्रगति में मानवीय संबंधों के सरोकार को आधुनिकता के भाव-बोध ने जो दिशा दी है, वह निःसंशय अपनी स्वार्थ-प्रवृत्ति की भीषण विकास-कथा है। अपनी दिशाओं से आश्चर्यजनक रूप से अलग होकर वर्तमान मानव जिस लालसा की चाहत में अपने प्रगाढ़ संबंधों में विडम्बना खड़ा कर रहा है, वह वस्तुतः अपनी जड़ों को खोदना और खोखला बनाना है। छीजते जीवन-मल्यों और दम तोड़ते मानवीय रिश्तों के बीच वृद्धों की स्थिति आज सबसे अधिक दयनीय दिखती है।

प्राचीन समय से ही हमारे समाज में वृद्धों के प्रति सम्मान सहानुभूति और आदर की भावना थी। समाज में हम अपने बुजुर्गों के मान-सम्मान को ध्यान में रखकर ही हम उचित-अनुचित किसी प्रकार का कार्य कर सकते थे, उन्हीं के मार्ग-निर्देशन पर आगे भी कार्य किया जाता था, किन्तु आजकल के नवयुवक अपनी ही बातों पर अटल रहते हैं एवं अपनी मानमानी करते हैं उन्हें अपने से बड़ों के फैसले की कोई जरूरत नहीं होती। इस तरह छोटी-छोटी बातों से ही वृद्धों की महत्ता धीरे-धीरे घटती गयी।

आजकल हमारे समाज में वृद्धों को अनुपयोगी तथा निरर्थक माना जाता है। नवयुवक उन्हें अपनी प्रगति के मार्ग का बाधा समझते हैं जिस कारण व्यक्तिगत रूप से समाज की उपेक्षा वे अपने को निराश महसूस करते हैं। इस प्रकार धीरे-धीरे उनके स्वास्थ्य पर भी बुरा असर पड़ता है। शारीरिक या मानसिक शक्ति का धीरे-धीरे क्षय होता है जिस कारण वे कोई भी कार्य स्वयं नहीं कर पाते हैं और उन्हें दुसरोँ पर निर्भर होना पड़ता है। वृद्ध हो जाने के कारण वे अपनी अवस्था को समझते हुए ही वैसा ही आचरण करते हैं और जीने का सार्थक ढंग भी तलाशने का प्रयास करते हैं। बहू-बेटे के रोज-रोज के व्यवहार से परेशान वाऊजी अम्माजी को समझाते हैं।

वृद्ध हो जाने के कारण बहू-बेटे हर अन्याय को सहन करती है, लेकिन किसी के समक्ष कुछ न बोलती और सोचती है बिना प्रयास किए ही मनुष्य की झोली में बुढ़ापा आ पड़ती है।

वृद्ध हो जाने के कारण उन्हें समाज में कई प्रकार के कष्ट होते हैं। जो असहनीय होती हैं तब उन्हें लगता है कि वृद्ध होना किसी अभिशाप से कम नहीं है, जिससे उन्हें मृत्यु के पश्चात ही मुक्ति मिलेगी! वृद्धजन सम्पूर्ण समाज के लिए अतीत के प्रतीक एवं अनुभवों के भंडार तथा सभी के श्रद्धा के पात्र हैं। हमारे समाज में यदि उन्हें उपयुक्त सम्मान मिले और उनके अनुभवों का लाभ उठाया जाय तो वे हमारी प्रगति के मार्ग में विशेष भागीदारी भी कर सकते हैं।

'बैलागड़ी पर समान लद चुका था। गाँव के लोग देख रहे थे कि रामजीवन बाबू जा रहे हैं। हताश और टूटे हुए दिल से रामजीवन बाबू जा रहे हैं। रामजीवन बाबू ने गाँव के सीमांत पर बरम बाबा को प्रणाम किया। टीन की छज्जियों का टूटा-फूटा मंदिर जंगली घास और पेड़ पर गिद्ध बैठे थे, गिद्धों के बीच से बरम बाबा के गहबर मंदिर की छत फटी हुई थी। उजले-उजले अनगिनत दाग..... जैसे सफेद चरक के दाग हों।'<sup>(1)</sup>

'नया घर चढ़े' कहानी संग्रह की एक और सशक्त कहानी 'निरबंसी काका' शीर्षक कहानी में कहानीकार ने ग्रामीण परिवेश में जन्मे बड़े ऐसे व्यक्ति को अपनी लेखनी से जीवंतता प्रदान की है जो पढ़ने-लिखने के मामले में 'अंगूठा छाप है' और उसके लिए 'काला आखर भैंस बराबर है। लेकिन देसी हिसाब से लेकर जमीन के नाप-जोख और खेती बाड़ी की तकनीकी जानकारी में सबको सलाह देने वाला वह अकेला आदमी है। कथाकार रामधारी सिंह दिवाकर ने निरबंसी काका के रूप में एक ऐसी शख्सियत का निर्माण किया है जो अपने सुख-दुःख को भूलकर दूसरों के सुख-दुःख में हमेशा शामिल रहता है, जो जाति-पाति,

सवर्ण शूद्र का भेद-भाव भूलकर सबके साथ खाने-पीने और मिलकर रहने वाले सभी दुर्लभ गुणों से भरपूर है। कहानीकार के शब्दों में—

“कच्चा-पक्का कोई भी खाना किसी के घर खा लेते थे। गाँव में किसी पर कोई विपत्ति आ जाए तो मझले काका अपना काम धाम छोड़कर वहीं हाजिर। चमारों के घर उनकी थाली में वे मजे से भोजन कर लेते।”<sup>(2)</sup>

समाज में जुड़ने और अपने मानवतावादी गुणों के कारण निरबंसी काका गाँव के बड़े वर्गों में प्रिय बन गए थे। उनकी अन्य विशेषताओं में भतीजों को ही पुत्रवत् मानकर दूसरी शादी न करके स्वयं निःसंतान रहकर भी खुशी-खुशी जीवन बिताना एक था। दिवाकर जी ने काका को तुलनात्मक रूप में ऊँचा उड़ने के लिए टंडन साहब के रूप में एक ऐसे पात्र का सृजन किया है

“जिसके कहने के चार संतान हैं, लेकिन बाप से किसी को कोई मतलब नहीं। कोई झाँकने भी नहीं आता। कि बाप की क्या स्थिति है। दूसरी तरफ अपने भतीजों के पास से लौटकर निरबंसी काका जब गाँव दरवाजे पर खड़ा हो जाता है तो कोई लोग अगवानी करते हैं।”<sup>(3)</sup>

समग्रता में हम पाते हैं कि दिवाकर की कहानियों में गाँव के जिस स्वरूप का चित्राण है वह गाँव का एक नया चेहरा है। बदलता हुआ गाँव शहरी संस्कारों से पूरी तरह आवेशित हो चला है। गाँव को लेकर पूरी धारणाएँ बदल चुकी हैं।

“महानगर चाहे सुरक्षित हो, लेकिन जातिवादी वैमन्य के कारण गाँव आज ज्यादा सुरक्षित हो गए हैं। इन सबके बीच जो एक नई चेतना गाँव में उभरी है, वह अपना मध्यवर्गीय जातियों, पिछड़ों और दलितों का राजनीतिक और सामाजिक हस्तक्षेप है। पुरानी वर्णवादी व्यवस्था की सामाजिक संरचना को इस नये समीकरण ने झकझोर डाला है। जो अब तक हाशिये पर थे वे लोग अब सत्ता के केन्द्र में आ गए हैं। दिवाकर की कहानियों के केन्द्र में ऐसे ही गाँव आये हैं।”<sup>(4)</sup>

“वास्तव में दिवाकर को जिंदगी की सच्चाई का टुकड़ा हाथ लगा है, वह है गाँव और शहर की संक्रमणशील स्थिति और सच्चाई के इस टुकड़े के विविध कोण भी है जिसे गाँव पर शहरी मानसिकता का दबाव, स्वर्णपंखी उड़ान की लालसा वाली विच्छिन्नमूलक जल कुम्भी की महत्त्वकांक्षी गाँव की पीढ़ी-लिखी नई पीढ़ी, वैभव के चकाचौंध से चुंधियाये लोग, निरंतर विकृत सामाजिक व्यवस्था आदि। उपर्युक्त आलोक में एक समीक्षक ने दिवाकर की कहानियों को तीन वर्गों में रखकर परखने की बात कही है— (1) जलकुम्भी पीढ़ी के नायकों की कहानियाँ, (2) गाँव के बदलते हुए चेहरे की कहानियाँ, (3) विविध विषयक कहानियाँ।”<sup>(5)</sup>

पहले वर्ग की कहानियों में कथाकार ने ग्रामीण-परिवेश व वातावरण में पले-बढ़े ऐसे केन्द्रीय पात्रों को इर्द-गिर्द में केन्द्रित रखा है — जो गाँव की नई पीढ़ी के हैं, शहर में नौकरी करते हैं और जो स्वकेन्द्रीयता के शिकार, स्वार्थी, विच्छिन्न मूल-कुटित, आत्म विश्वास रहित तथा निराशा की हद तक दुर्बल हैं। जैसे—

“दिल्ली में दीदी का पत्र मिलने के बाद सोचा था पहुँचने तक बाइ जी की जिन्दगी का अंतिम अध्याय पूरा हो चुका होगा, शेष कथा के रूप में कर्मकाण्डों की खानापूरी भर होगी। जमीन जायदाद बेचकर ही लौटने का निश्चय था।”<sup>(6)</sup>

इस प्रकार शहर और गाँव दोनों स्थलों पर होने वाली सम्पूर्ण गति विधियों एवं हलचलों पर दिवाकर की पैनी दृष्टि है। आठवें दशक से लगातार वर्तमान समकालीन समय के बदले स्वरूप का पर्दाफाश करती इनकी लेखनी अद्वितीय अद्भुत और अकल्पनीय है।

“बारह साल खेत जोतने से आसानी से कास्तकार का हो जाता है। मैं तो इस झोपड़ी में बूढ़ी हो गई। मेरे सास-ससुर और उनके बाप-दादे इसी झोपड़े में रहे। अब इसे यमराज को छोड़कर कोई मुझसे नहीं ले सकता।”<sup>(7)</sup>

ग्रामीण जीवन के निम्नवर्गीय पात्रों में यह चेतना वस्तुतः चौकाने वाली थी। पर नवजागरण के फलस्वरूप जो नयी चेतना जन्म ले रही थी वही शहर से लेकर गाँव तक को किसी प्रकार प्रभावित करती थी। इसका संकेत इस प्रकार देख सकते हैं।

प्रेमचंद की प्रारंभिक कहानियों में जहाँ ग्रामीण संयुक्त परिवार प्रथा की हिमायत दिखाई गई है। ‘बड़े घर की बेटी’ की नायिका आनंदी टूटते घर को संभालती नजर आती है। वहीं बाद की कहानियों में प्रेमचंद ने गाँव में टूट रहे संयुक्त परिवार-प्रथा की ओर इशारा अनेक जगह किया है। वैयक्तिक स्वार्थ लोलुपता के कारण गाँव की संयुक्त परिवार प्रथा में टूटन शुरू हो जाती है। ‘अलग्योझा’ नामक कहानी में मुलिया संस्कृत परिवार के प्रति विद्रोह की भावना से पूर्ण दिखती है। मुलिया का यह विद्रोह भाव सामाजिक चेतना में आयी विद्रोह की भावना को मुखर करता है— “मैं लौंडी बनकर न रहूँगी। रुपये-पैसे का मुझे कुछ हिसाब नहीं मिलता। न जाने तुम क्या लाते हो और वह क्या करती है। तुम समझते हो रुपये घर में ही तो हैं, मगर देख लेना तुम्हें जो एक फूटी कौड़ी भी मिले।”<sup>(8)</sup>

### निष्कर्ष

इन लेखकों की कहानियों में गाँव की मिट्टी की जो सोंधी महक और ग्रामीण जीवन की झलक दिख पड़ती है वह जैनेन्द्र और अशक की कहानियों से भिन्न है। इसके पूर्व गाँव अपने परिपार्श्व की पूर्णता में चित्रित नहीं हो पाये थे, किन्तु इन लेखकों ने अपनी कहानियों में गाँव के जो चित्र उकेरे हैं वे मूलतः रोमांटिक हैं। इसके मूल में कारण यह था कि ये सभी लेखक अपने-अपने गाँवों में रहकर, वहाँ के सुख-दुःख से अवगत होकर शहरों में आये थे। यही कारण था कि पीछे छूटे हुए गाँवों की यादों की रूमानीयत वहाँ परिलक्षित है। शिव प्रसाद सिंह की प्रारंभिक कहानियाँ इसलिए अतीतोन्मुख है। दादा, दादी, भाई आदि के माध्यम से उन्होंने जिन ध्वंसोन्मुख मूल्यों को प्रतिष्ठित किया है, वे एक ओर जहाँ रोमांटिक हैं, वहाँ पूर्वजों की मूल्यगत प्रतिभा ने उन्हें मोहग्रस्त भी बना दिया है। उनका यह यथार्थ उनके स्वयं का भोगा हुआ न होकर केवल देखा या सुना हुआ है। किन्तु जहाँ वे अतीतोन्मुख नहीं हैं, वहाँ उनकी कहानियाँ अधिक यथार्थपरक रही हैं। मार्कण्डेय की ग्रामांचल पर लिखित कहानियों में भी प्रारंभ में यही अतीतोन्मुखता दिखाई देती है। ‘गुलरा के बाबा’ और ‘हंसा जाई अकेला’ में अतीत के प्रति रोमानी दृष्टिकोण को अपनाया गया है। बाद में उन्होंने गाँव में उगते हुए वर्ग संघर्ष को पहचानने और चित्रित करने की भी कोशिश की।

### संदर्भ सूची

1. जहर: नया घर चढ़े, दिवाकर, पृ०-54
2. निरबंसी काका : नया घर चढ़े, दिवाकर, पृ०- 72
3. वही, पृ०- 92
4. ग्रामीण संवेदना की अभिव्यक्ति के सफल कथाकार, डॉ० प्रमोद कुमार सिंह, ग्रामीण जीवन का समाज शास्त्र, ले० जीतेन्द्र वर्मा, पृ०- 29
5. रामधारी सिंह दिवाकर की कहानियाँ : पवन कुमार झा, ग्रामीण जीवन का समाज शास्त्र, ले० जीतेन्द्र वर्मा, पृ०- 29
6. विदा दृष्टि : सरहद के पार, दिवाकर, पृ०- 120
7. विध्वंस : प्रेमचंद- मान सरोवर, पृ०- 180-181
8. अलग्योझा : प्रेमचंद- मान सरोवर- भाग-1, पृ०- 18